ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2022; 8(2): 27-34
www.allresearchjournal.com
Received: 22-11-2021
Accepted: 05-01-2022

सत्येंद्र कुमार पाण्डेय
(पीएच. डी.) सहायक प्राध्यापक, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
सत्येंद्र कुमार पाण्डेय
(पीएच. डी.) सहायक प्राध्यापक, बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

बुद्धवचन के संरक्षण में बौद्ध-संगीति का महत्त्व : एक विमर्श

सत्येंद्र कुमार पाण्डेय

सारांश
बौद्ध-धर्म के इतिहास में बौद्ध-संगीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संप्रति त्रिपिटक के रूप में उपलब्ध बुद्ध की शिक्षाओं का संग्रह उन विभिन्न संगीतियों का परिणाम है, जिनका आयोजन बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके शिष्यों ने समय समय पर किया। बुद्ध के 45 वर्षों की चारिका के क्रम में उनके एवं सारिपुत्त, महाकस्सप आदि जैसे उनके तत्कालीन प्रमुख शिष्यों के द्वारा प्रज्ञप्त यत्र-तत्र प्रकीर्ण उपदेशों को प्रामाणिक रूप में संकलित एवं संरक्षित करने के निमित्त संगीति (बौद्ध-सम्मेलन) आयोजित करने की जिस प्रक्रिया का प्रारम्भ राजगृह से हुआ, वह कमोवेश म्यांमार (बर्मा) स्थित यांगोन (रंगून) की संगीति तक चलती रही। वस्तुतः मौर्य सम्राट अशोक के द्वारा तृतीय बौद्ध-संगीति के निर्णयों के पश्चात जिन-जिन देशों में बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ उन उन देशों में तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुरूप बुद्ध-वचन की प्रामाणिकता को सुरक्षित एवं अक्षुण्ण बनाए रखने तथा बौद्ध-संघ की परिशुद्धि को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संगीतियों का आयोजन किया जाता रहा। बौद्ध-धर्म को अंगीकार करनेवाले विभिन्न देशों अनेक संगीतियों का आयोजन हुआ जिनमें से छः संगीतियों (भारत में आयोजित प्रथम तीन संगीतियां, श्रीलंका में आयोजित एक संगीति एवं म्यांमार में आयोजित दो संगीतियां) अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उन संगीतियों ने बौद्ध-धर्म के मौलिक सिद्धांतों को त्रिपिटक एवं उससे सम्बद्ध साहित्य (अट्ठकथा, टीका आदि) के रूप में संकलित एवं संरक्षित कर बौद्ध-धर्म की सत्यता को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस पृष्ठभूमि में प्रस्तुत पत्र का प्रतिपाद्य विषय है :- बुद्धवचन के संरक्षण एवं बुद्ध-शासन के प्रचार-प्रसार में छः संगीतियों के प्रभाव का विश्लेषण करना।

कूट शब्द: संगीति, संगायन, दसवत्थुनी आदि

प्रस्तावना
बौद्ध-धर्म के इतिहास में बौद्ध-साइंगीति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संप्रति *त्रिपिटक* के रूप में उपलब्ध बुद्ध की शिक्षाओं का संग्रह उन विभिन्न संगीतियों का परिणाम है, जिनका आयोजन बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके शिष्यों ने समय समय पर किया। बौद्ध शब्दावली में इन संगीतियों को 'संगायन' कहा जाता है। चुल्लवग्ग, समन्तपासादिका, सुमंगलविलासिनी, दीपवंस, महावंस, सद्धम्मसंगह, सासनवंस आदि जैसे पालि ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों से यह ज्ञात होता है कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात उनके शिष्यों ने अनेक संगीतियों का आयोजन किया।

इन संगीतियों के आयोजन का मुख्य कारण एवं उद्देश्य सम्यक संबोधि की प्राप्ति से लेकर महापरिनिर्वाण तक बुद्ध के 45 वर्षों की चारिका के क्रम में प्रदत्त प्रवचनों का संग्रह एवं संरक्षण रहा है। उल्लेखनीय है कि पहली शताब्दी ईसा पूर्व में बुद्धवचन के लिपिबद्ध किए जाने तक यह मौखिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अंतरित एवं प्रसारित होता रहा। हालांकि, बुद्धवचन का मौखिक सम्प्रेषण अभी भी जारी है।

उद्देश्य

अतएव उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पत्र का उद्देश्य है: साहित्य-विश्लेषण की शोध-प्रविधि का अवलम्बन कर संगीति के अर्थ, एवं बुद्ध-प्रज्ञप्त धर्मों के संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में काल-क्रम में आयोजित महत्त्वपूर्ण संगीतियों की भूमिकाओं एवं प्रभावों को रेखांकित करना।

संगीति शब्द का अर्थ

धम्म (धर्म) संबंधी ग्रन्थों को सुनिश्चित प्रारूप प्रदान करने तथा उससे संबन्धित प्रश्नों के समाधानर्थ बौद्ध भिक्षुओं द्वारा आयोजित सामान्य सम्मेलन को संगीति कहते है। इसे संगायन भी कहते हैं जिसका तात्पर्य है – साझा पाठ अथवा एक साथ इकट्ठा होकर किया गया (धम्म का) पाठ। [1] पालि ग्रंथ में इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है "...यथा पञ्चयं तत्थ तत्थ देसितत्ता पञ्ञत्ता च विप्पकिण्णं धम्मविनयानं संगहेत्वा गायनं कथनं संगीति। [2] अर्थात यत्र-तत्र धम्म एवं विनय, जो प्रकीर्ण रूपसे उपदेशित एवं प्रज्ञप्त है, के संग्रह के लिए एक स्वर में किए गए पाठ को संगायन कहा जाता है। यद्यपि दीघनिकाय के पाथिकवग्ग के दसवें सुत्त [3] के नाम में संगीति शब्द का प्रयोग देखा जाता है, किन्तु यह सुत्त बुद्ध के अग्रश्रावक सारिपुत्त द्वारा उपदेशित है। इस सुत्त का प्रज्ञापन सारिपुत्त ने बुद्ध के महापरिनिर्वाण से पूर्व पावा स्थित चुन्द कम्मारपुत्र के आम्रवन में मल्लों को संबोधित करते हुए किया था। इस सुत्त का प्रज्ञापन निग्रंथ नाथपुत्र (निगण्ठ नाटपुत्त) के निधन के पश्चात उनके उपदेश की प्रामाणिकता को लेकर उनके शिष्यों के मध्य उत्पन्न विवाद की पृष्ठभूमि में किया गया। निग्रंथ नाथपुत्र के शिष्यों के मध्य हुए कलह-विवाद को देखते हुए बौद्ध भिक्षुओं में भी यह आशंका उत्पन्न हुई कि कहीं बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात उनके मध्य भी ऐसा विवाद उत्पन्न न हो जाय। [4] बौद्ध भिक्षुओं की इस आशंका को दूर करने के उद्देश्य से सारिपुत्त ने इस सुत्त में बुद्धोपदेशित धम्म (धर्म) को संख्या के आधार पर संग्रहीत कर प्रतिपादित किया तथा यह कहा कि बौद्ध संघ में ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की संभावना नगण्य है क्योंकि बुद्धोपदेश "सु-आख्यात (अच्छी तरह से व्याख्यायित), सु-प्रवेदित (अच्छी तरह से साक्षात्कृत), नैयार्णिक (दुःख से दूर ले जानेवाला), उपशम-संवर्तनिक (शांति-प्रदायक), सम्यक-संबुद्ध-प्रवेदित (सम्यक संबुद्ध द्वारा ज्ञात) है।" [5] अतः ऐसे धम्म का संगायन (रक्षा) बिना किसी विवाद के सभी को समान मत से करनी चाहिए। बुद्ध ने इस सुत्त के माध्यम से प्रकट सारिपुत्त के भाव का अनुमोदन करते हुए इस उपदेश को अच्छा संगीतिपर्याय (एकता के ढंग) की संज्ञा से अभिहित किया। [6] सारिपुत्त के द्वारा प्रयुक्त संगायितब्बं (संगायन करना चाहिए) को ध्यान में रखते हुए अट्ठकथाकार बुद्धघोस (बुद्धघोष) ने कहा है कि धम्म को बिना किसी विचलन के समान रूप से पाठ (संगायन) किया जाना चाहिए। [7]

प्रथम संगीति का प्रभाव

उपर्युक्त कथन की पृष्ठभूमि में यह कहा जा सकता है कि संगीति अर्थात संगायन की प्रवृति को संभवतः एकता स्थापित करने के उपकरण के रूप में देखा जाता था। यही कारण है कि जब महाकस्सप ने बुद्ध के महापरिनिर्वाण की खबर को सुनकर शोक संतप्त विलाप कर रहे क्लेशयुक्त (अवीतराग) भिक्षुओं को सांत्वना देते हुए सुभद्द भिक्षु की निम्नलिखित वाणी को सुनकर धम्म एवं विनय के संगायन का निश्चय किया।

> "बस आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुमुक्त हो गए उस महाश्रमण पीड़ित रहा करते थे। यह तुम्हें विहित नहीं है। अब हम जो चाहेंगे सो करेंगे, जो नहीं चाहेंगे सो नहीं करेंगे।" [8]

महाकाश्यप को सुभद्द के उपर्युक्त वचन सुनकर विस्मय हुआ और उसे धर्म के चिरस्थायित्व एवं संघ की एकता के लिए खतरे की घंटी माना। अतएव बुद्ध के पार्थिव शरीर का अंतिम संस्कार करने तथा उनके अस्थि-अवशेषों के वितरण के पश्चात वहाँ उपस्थित भिक्षुसंघ को संबोधित करते हुए महाकाश्यप ने कहा –

> "अच्छा हो आवुसो! हम धम्म और विनय का संगायन (एक साथ एकत्र होकर पाठ करना) करें, (हमारे) समक्ष अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म विनष्ट हो रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय विनष्ट हो रहा है। अधर्मवादी

बलवान हो रहे हैं, धर्मवादी दुर्बल हो रहे हैं, अविनयवादी बलवान हो रहे हैं, विनयवादी निर्बल हो रहे हैं। [9]।

महकस्सप के उपर्युक्त कथन के आलोक में बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात प्रथम संगायन का आयोजन हुआ। विनयपिटक के अंतर्गत परिगणित चुल्लवग्ग के पञ्चसतिक्खंधक में वर्णित तथ्य के अनुसार बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन महीने बाद राजगृह स्थित वैभार पहाड़ी के सत्तप्पण्णी (सप्तपर्णी) गुफा में प्रथम संगायन का आयोजन किया गया। मगध सम्राट अजातशत्रु के संरक्षण में आयोजित इस संगीति में 500 अर्हत भिक्षुओं ने भाग लिया। इस संगीति की अध्यक्षता महाकश्यप स्थविर ने की। उपाली स्थविर ने विनय का तथा आनंद ने धम्म का संगायन कर त्रिपिटक का संकलन किया और संगीति में सम्मिलित अन्य भिक्षुओं ने इसका अनुमोदन किया। [10] धम्म और विनय के संगायन के क्रम में यह संगीति सात माह तक चलती रही जिसमें संगीतिकारक भिक्षुओं ने तीन पिटकों को प्रथम बार प्रामाणिक रूप प्रदान किया।

इसप्रकार बुद्ध के 45 वर्षों की चारिका के क्रम में जम्बुद्वीप के विभिन्न जनपदों, नगरों एवं ग्रामों यत्र-तत्र प्रज्ञप्त उपदेशों को संकलित कर उन्हें त्रिपिटक के रूप में एक प्रामाणिक प्रारूप प्रदान करने के अतिरिक्त इस संगयान ने भिक्षु सुभद्द जैसे अधर्मवादियों के कारण संघ में उत्पन्न होनेवाले संभावित खतरे को दूर किया। वस्तुतः इस संगीति ने धम्म एवं विनय के रूप में बुद्ध-प्रज्ञप्त उपदेशों को वर्तमान समय तक बिना किसी त्रुटि, समंजन, जोड़ और विलोपन के संरक्षित रखने की आधारशिला का कार्य किया। उल्लेखनीय है कि धम्म एवं विनय के संगायन के क्रम में उसके प्रत्येक पहलू पर प्रश्न एवं उत्तर का आश्रय लेते हुए गहन एवं विस्तृत विचार किया गया और उन्हें सर्वसम्मति से अंगीकार करते हुए धम्म और विनय के रूप में प्रतिष्ठित कर आलेखित किया गया। इस संगायन में न सिर्फ आनंद के ऊपर लगाए गए आरोपों [11] की जाँच की गयी अपितु, इसने आनंद को भिक्षु छन्न (छंद) को अपने सहचर भिक्षुओं के प्रति उसके अनुचित व्यवहार के लिए ब्रह्म-दंड देने का निर्देश भी दिया। [12] यहाँ यह भी उल्लेख कर देना समीचीन प्रतीत होता है कि बौद्ध साहित्य के लंबे इतिहास में संगयान का क्रमिक उद्भव न केवल प्रथम संगयान सम्मेलन का परिणाम है, अपितु, बुद्धशासन के लंबे अस्तित्व को बनाए रखने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

द्वितीय संगीति का प्रभाव

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 100 वर्ष पश्चात वैशाली के वालुकाराम में द्वितीय संगीति का आयोजन किया गया जिसमें 700 स्थविर भिक्षुओं ने भाग लिया। अतएव इस संगीति को सतसतिका संगीति कहा जाता है। इस संगीति को राजा कालाशोक ने संरक्षण प्रदान किया। इस संगीति के आयोजन का मुख्य कारण वैशाली के वृज्जीपुत्रक (वज्जिपुत्तक) भिक्षुओं के द्वारा विनय प्रज्ञप्त नियमों के विरुद्ध दसवत्थुनि (दस वस्तु) धर्मों के अभ्यास पर बल दिया जाना था। ये दसवत्थुनि धर्म [13] थे :

1. सिंगिलोणकप्प - पशु-शृंगों में रखकर नमक ले जाने की प्रवृति ताकि भोजन के समय उसका प्रयोग किया जा सके।
2. द्वंगुलकप्प - - दोपहर के बाद दो अंगुल की छाया होने के पश्चात भोजन करना।
3. गामान्तरकप्प - (एक ही दिन में) दूसरे ग्राम में जाकर भिक्षा खाना।
4. आवासकप्प - समान सीमा के अंतर्गत अलग-अलग उपोसथ का पालन करना।
5. अनुमतिकप्प – किसी कार्य के सम्पादन के पश्चात संघ की अनुमति प्राप्त करना।
6. आचिण्णकप्प – आचार्य के आचरणों का अनुकरण करना।
7. अमत्थितकप्प – दूध के दही की अवस्था में परिवर्तित होने के पूर्व की अवस्थावाले पेय पदार्थ को ग्रहण करना।
8. जलोङ्गिपातुं – हल्का मादक पेय (ताड़ी) को ग्रहण करना।
9. अदसकनिसीदनं – बिना मगजी (सीमा/झालर) वाले आसन का उपयोग करना।
10. जातरूपरजतग्गहणं – स्वर्ण, चाँदी आदि को ग्रहण करना।

यस काकंदक पुत्त के प्रयास से 700 भिक्षुओं वाली वैशाली संगीति ने वज्जीपुत्तक भिक्षुओं के द्वारा पालन किए जा रहे उपर्युक्त दस वस्तुओं के विनयविहित अथवा विनयविरुद्ध होने पर विचार करना प्रारम्भ किया किन्तु, इसपर किसी निश्चय पर पहुँचने के पूर्व ही संगीति का बहुत सारा समय व्यर्थ चला गया, क्योंकि सगीति में भाग ले रहे भिक्षुओं के मध्य मतैक्य का निर्माण नहीं हो पा रहा था। अतएव संगीति ने उस विषय पर विचार करने के लिए पातिमोक्ख के संगायन के क्रम में अपनायी जानेवाली 'उब्बाहिका-पद्धति' के अवलंबन का निर्णय किया। परिणामतः आठ सदस्यीय समिति का गठन किया। इसमें चार भिक्षु पूर्वी क्षेत्र से तथा चार भिक्षु पश्चिमी क्षेत्र से सम्मिलित किए गए। पूर्वी क्षेत्र से चयनित चार भिक्षु थे – सर्वकामी, साढ़, क्षुद्रशोभित एवं वर्षभग्रामिक। पश्चिमी

क्षेत्र से चयनित चार भिक्षु थे – रेवत, संभूत शाणवासी, यशकाकन्दकपुत्र, एवं सुमन। [14] अजित सर्वकामी को आसन-प्रज्ञापक नियुक्त किया गया। [15] इस आठ सदस्यीय समित ने वैशाली के भिक्षुओं द्वारा पालन किए जा रहे सभी दस वस्तुओं पर विचार किया तथा उसे संघ के लिए अविहित एवं विनयविरुद्ध ठहराया। तत्पश्चात समिति के निर्णय को 700 भिक्षुओं की संगीति की पूर्ण सभा के समक्ष अनुमोदन के लिए रखा। संगीति ने उब्बाहिका-पद्धति के अनुसार समिति द्वारा लिए गए निर्णय का अनुमोदन कर दिया।

श्रीलंकाई वंस साहित्य के वृतांत से यह स्पष्ट होता है कि वैशाली के सभी भिक्षुओं ने दूसरी संगीति के निर्णय को स्वीकार नहीं किया। संगीति के निर्णय से असहमत भिक्षुओं ने एक समानान्तर पृथक संगीति का आयोजन किया जिसमें अर्हत एवं अनर्हत सभी भिक्षु सम्मिलित हुए और अपने विश्वास के अनुरूप उपर्युक्त विषय का निर्णय किया। इस संगीति में कहा जाता है कि करीब 10000 भिक्षुओं ने लिया। अतएव इसे महासंगीति अथवा महासंघ कहते है और इसमें भाग लेनेवाले भिक्षुओं को महासांघिक कहा गया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि द्वितीय संगीति के परिणामस्वरूप वज्जिपुत्तक भिक्षुओं के द्वारा पालन किए जा रहे दसवत्थुनी धम्म को विनय-विरुद्ध बताकर जहां एक ओर धर्म एवं विनय की शुद्धता सुनिश्चित हुई, वहीं दूसरी तरफ बौद्ध-संघ में औपचारिक मतभेद हो गया। परिणामतः सारनाथ में बुद्ध के द्वारा स्थापित संघ 'मूल-संघ' एवं 'महासंघ' में विभाजित हो गया।

तृतीय संगीति का प्रभाव

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 218 वर्ष पश्चात 247 ई. पू. [16] में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन महान मौर्य सम्राट अशोक [17] के शासनकल (के 21 वें वर्ष) में पाटलिपुत्र अवस्थित अशोकाराम में हुआ। [18] उपलब्ध स्रोतों [19] से प्राप्त जानकारी के अनुसार अशोक के बौद्ध-धर्म को स्वीकार कर लेने के पश्चात बौद्धेतर धर्मों को राजाश्रय मिलना बंद हो गया था। मात्र बौद्ध संघ को राजकीय संरक्षण प्राप्त होने के कारण अन्य धर्मावलम्बी साधु संतों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी, जबकि बौद्ध भिक्षुओं को प्रचुर सुविधाएं प्राप्त थी। बौद्ध संघ को मिलनेवाली सुविधाओं से आकर्षित होकर अनेक गैर बौद्ध धर्मावलम्बी बौद्ध संघ में दीक्षित हो गए। किन्तु, बौद्ध संघ में दीक्षित होने के बाद भी वे अपने-अपने धर्म के रीति-रिवाजों, नियमों, कर्मकांडों का पालन करते रहे। परिणामतः असली बौद्ध भिक्षुओं ने ऐसे भिक्षुओं के साथ परम्परागत उपोसथ का आयोजन करने से इंकार कर दिया। परिणामतः बौद्ध संघ में लगभग सात वर्षों तक उपोसथ का आयोजन नहीं हो सका। [20] जब इसकी सूचना अशोक को मिली उसने अपने एक मंत्री को बौद्ध संघ में उपोसथ आयोजित करवाने का निर्देश दिया।

जब राजाज्ञा के अनुसार मंत्री ने बौद्ध संघ को उपोसथ आयोजित करने का निर्देश दिया, बौद्ध संघ के मूल बौद्ध भिक्षुओं ने अन्य धर्मावलम्बी भिक्षुओं के साथ उपोसथ करने से मना कर दिया। इसपर उस मंत्री ने उन सभी भिक्षुओं, जिसने उपोसथ करने से इंकार किया, का शिर काट लेने का आदेश दिया। उपोसथ से इंकार करनेवाले भिक्षुओं में बौद्ध धर्म में दीक्षित सम्राट अशोक का भाई निग्रोध भी सम्मिलित था। मंत्री को ज्योहीं यह पता चला कि निग्रोध भी उपोसथ करने से इंकार करने वालों में सम्मिलित है, उसने भिक्षुओं की हत्या पर रोक लगा दिया और इस घटना की सूचना अशोक को दी। सम्राट अशोक इस घटना की सूचना पाकर पश्चाताप से ग्रस्त हो गया और उसने बौद्ध संघ के पास पहुँच कर यह पूछा कि वह इस जघन्य घटना के लिए कितना उत्तरदायी है। इस पाप का भागी कौन है। बौद्ध संघ ने सम्राट को इस कृत्य के परिणाम के संदर्भ में अहोगंग निवासी मोग्गलिलीपुत्त तिस्स से संपर्क स्थापित करने का निर्देश दिया। मोग्गलिपुत्त तिस्स ने इस घटना के लिए सम्राट को दोषी नहीं माना तथा बौद्ध संघ में व्याप्त भिन्नता एवं बुराइयों को दूर करने के उद्देश्य से संगीति के आयोजन करने का निर्देश दिया। परिणामतः सम्राट अशोक की संरक्षता में पाटलिपुत्र के अशोकाराम में बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ जो बौद्ध इतिहास में तृतीय बौद्ध संगीति के नाम से विख्यात है।

इस संगीति में 1000 भिक्षुओं ने भाग लिया और इसकी अध्यक्षता मोग्गलिपुत्त तिस्स ने किया। [21] इस संगीति ने उस समय बौद्ध संघ के विभिन्न धर्मावलम्बी भिक्षुओं द्वारा पालन किए जा रहे विचारों पर एक एक कर विचार किया और उन्हें बुद्ध-प्रज्ञप्त विनय एवं धम्म नियमों के विरुद्ध सिद्ध किया। संगीति में विचार किए गए विभिन्न तैर्थिक विचारधाराओं एवं उनके खण्डन का विवरण प्रस्तुत करने के लिए मोग्गलिपुत्त तिस्स ने कथावत्थु नामक ग्रंथ की रचना की [22] जिसे अभिधम्म के पंचम ग्रंथ के रूप में तिपिटक में सम्मिलित किया गया। तत्पश्चात संगीति में पुनः बुद्धवचन का संगायन एवं वर्गीकरण कर उसकी मौलिकता एवं प्रामाणिकता की पुष्टि की गयी। संगीति के समापन के पश्चात राजाज्ञा से करीब 60,000 विधर्मी (तैर्थिक) भिक्षुओं को श्वेत (अवदात) वस्त्र पहना कर संघ से निष्काषित कर दिया गया जिसकी पुष्टि अशोक

के सारनाथ, साँची एवं कौशांबी के संघभेद अभिलेख से होती है। [23] इसके अतिरिक्त सम्राट अशोक ने मोग्गलिपुत्त के निर्देश पर बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा भारतीय सीमा से परे अनेक देशो में नव (9) धर्मप्रचारक मंडलों को भेजा। [24]

इस प्रकार तृतीय बौद्ध संगीति के परिणामस्वरूप जहां पुनः बौद्ध संघ की परिशुद्धता को सुनिश्चित किया गया, वहीं कथावत्थु नामक ग्रंथ की रचना ने न सिर्फ अभिधम्म को अपितु त्रिपिटक को भी अंतिम रूप प्रदान किया। इस संगीति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह हुआ कि इस संगीति के पश्चात बौद्ध-शासन के प्रचारार्थ प्रेषित धर्म प्रचारकों के दलों ने भारतीय धरा पर उत्पन्न एवं विकसित बौद्ध धर्म को विश्व धर्म के रूप में स्थापित कर दिया।

चतुर्थ संगीति का प्रभाव

चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन 29वीं ईसा पूर्व (प्रथम सदी ईसा पूर्व) में श्रीलंका (तम्बपण्णी/पण्णि) स्थित मतले (मलय ग्राम) के पास आलोक गुहा में श्रीलंकाई राजा अभय वट्टगामिनी के संरक्षण एवं भिक्षु महाधम्म रक्खित की अध्यक्षता में हुआ। [25] इस संगीति में 500 अर्हत भिक्षुओं ने भाग लिया। इस संगीति के आयोजन का मुख्य प्रयोजन तृतीय संगीति के पश्चात श्रीलंका में बुद्ध-शासन के प्रचार के क्रम में स्थविर महिंद एवं उसके साथी अन्य भिक्षुओं के द्वारा लाये गए बुद्धवचन (त्रिपिटक) को लिपिबद्ध कर संरक्षित करना था। कहा जाता है कि संगीति में भाग लेनेवाले भिक्षुओं ने यह अनुभव किया कि विनय, सुत्त एवं अभिधम्म रूपी बुद्धोपदेश को मौखिक रूप से दीर्घकाल तक सुरक्षित रख पाना संभव नहीं है क्योंकि अब पूर्व की भांति ऐसे भिक्षुओं का अभाव होता जा रहा जो बुद्धोपदेश को अपनी स्मृति में सुरक्षित रख सके। यही नहीं, इस समय श्रीलंका में विद्रोह एवं अकाल के कारण मुख्यतः दान एवं भिक्षाटन पर आश्रित भिक्षुओं के समक्ष भूखमरी की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। ऐसी स्थिति में बुद्धधम्म को क्षति पहुँचने की संभावना उत्पन्न हो गयी थी। इस समय तक लिपि एवं लेखनी का विकास हो चुका था। अतएव वास्तविक बुद्ध-धम्म को स्थायी रूपसे सदा के लिए संरक्षित करने के निमित्त बुद्धवचन को लिपिबद्ध करने के उद्देश्य से चतुर्थ संगीति का आयोजन किया गया। संगायन के पश्चात बुद्धवचनों (त्रिपिटक) को प्रथम बार ताड़-पत्र पर लिपिबद्ध किया गया। ताड़-पत्र पर बुद्धवचन के अंकन के पश्चात उन पाण्डुलिपियों की सौ बार जाँच की गयी। परिणामतः पूर्व में स्मृतियों में बने रहनेवाला अथवा मौखिक रूपसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अंतरित होनेवाला बुद्धवचन लिपिबद्ध होकर स्थायी रूपसे अपने मौलिक प्रारूप में संरक्षित हो गया। अतएव इसे 'पुस्तकारोपण-संगीति' भी कहा जाता है। [26] आज विश्व के समक्ष जो बुद्धवचन उपलब्ध है, वह वस्तुतः इस संगायन का प्रतिफल है।

पंचम संगीति का प्रभाव

1871 ई. में राजा मीन दोन मीन के संरक्षण में पंचम संगायन का आयोजन बर्मा (म्यांमार) स्थित मांडले में किया गया। संगीति के लिए निर्मित स्वर्ण मण्डप में 2400 भिक्षुओं ने तीन प्रमुख संघनायकों स्थविर जगराभिवंस, नरिंदाभिधज और सुमंगलसामी की अध्यक्षता में भाग लिया। [27] इस संगीति के आयोजन का मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण बुद्धवचन का संगायन (पाठ) करना और उनकी सूक्ष्मता से जांच करना था कि क्या उनमें से किसी विकृति एवं परिवर्तन आ गया है या फिर उन्हें छोड़ दिया गया है। संगीति में प्रतिभागी भिक्षुओं ने ताड़-पत्रों पर अंकित सम्पूर्ण बुद्धवचन का लगभग पाँच महीनों तक संगायन किया। [28] पिटकों के संगायन के पूर्ण होने एवं उनके सर्वसम्मत अनुमोदन के पश्चात उसे शिलालेख के रूप में संगमरमर के फलकों पर उत्कीर्ण करने का निर्णय लिया गया। परिणामतः 729 संगमरमर फलक पर सम्पूर्ण त्रिपिटक को बर्मी लिपि में उत्कीर्ण किया गया। अतएव इस संगायन को 'शिलाक्षरारोपण-संगीति' के नाम से भी जाना जाता है। [29] संगमरमर फलक पर त्रिपिटक को उत्कीर्ण किए जाने के कर्म में विद्वान बौद्ध भिक्षुओं द्वारा उनका सूक्ष्म निरीक्षण एवं निगरानी किया जाता रहा ताकि उसके वर्णमाला, शब्द, पाठ और विराम चिह्न आदि में किसी प्रकार का विचलन न हो। शिलालेख के रूप में बुद्धवचन को उत्कीर्ण किए जाने के पश्चात उन फलकों को मांडले पहाड़ी की तलहटी में निर्मित कुथोदा पगोडा की सीमा के भीतर ईटों से निर्मित छतयुक्त अलग-अलग लघु पगोडा सदृश छोटे आकार के इमारतों में रखा गया। इसके कारण यह कुथोदा पगोडा में संरक्षित बुद्धवचन दुनिया के सबसे बड़े ग्रंथ के रूप में विख्यात है। इसप्रकार ताड़-पत्रों पर बुद्धवचन के अंकन की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी, उन्हें पंचम संगायन के पश्चात शिलालेख के रूप में उत्कीर्ण कर बुद्धवचन के दीर्घकालिक स्थायित्व को सबलता प्रदान किया। कालक्रम में यही पाषाण शिलालेख छठे संगायन के पश्चात एक प्रामाणिक संस्करण के रूप में उपस्थित हुआ।

षष्ठ संगीति का प्रभाव

संगमरमर फलक पर त्रिपिटक को उत्कीर्ण किए जाने के क्रम में विद्वान बौद्ध भिक्षुओं द्वारा उसके वर्णमाला, शब्द,

पाठ और विराम चिह्न आदि में किसी प्रकार का विचलन न होने देने के निमित्त से किए गए सूक्ष्म निरीक्षण एवं निगरानी किये जाने के पश्चात भी उनमें एक प्रति से दूसरी प्रतिलिपि में अंतरित करने के क्रम में कुछेक त्रुटियों का होना स्वाभाविक था। अतएव इन त्रुटियों का निराकरण कर बौद्ध-जगत के समक्ष एक प्रामाणिक स्थविरवादी त्रिपिटक को प्रस्तुत किए जाने के उद्देश्य से छठे संगायन का आयोजन किया गया। इस संगीति का आयोजन म्यांमार के प्रधानमंत्री ऊ नु की सरकार के संरक्षण में 1954 ईसवी में यांगोन (रंगून) के काबा-आये पहाड़ी पर किया गया। कहा जाता है कि इस संगीति के लिए लोकशम पगोडा के समीप प्रथम संगायन-स्थल 'सप्तपर्णी गुहा' के सदृश 'महा-पाषाण गुफा' का निर्माण किया गया। [30] इसमें दो हजार पांच सौ विद्वान स्थिरवादी भिक्षुओं ने भाग लिया, जिसमें आठ देशों - म्यांमार, कंबोडिया, भारत, लाओस, नेपाल, श्रीलंका, थाईलैंड और वियतनाम के आमन्त्रित भिक्षु भी सम्मिलित थे। विभिन्न देशों के भिक्षुओं का संगायन में सम्मिलित होना इस संगायन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। बर्मा (म्यांमार) से चयनित लगभाग 500 विद्वान भिक्षुओं को त्रिपिटक के पाठों के पुनरीक्षण का उत्तरदायित्व सौंपा गया। [31] इन भिक्षुओं में महत्त्वपूर्ण थे - महासी सयाडॉ, तिपिटकधर धम्मभण्डागारिक भदंत विचित्तासाराभिवंस। संगीति ने महासी सयाडॉ को तिपिटकधार धम्मभण्डागारिक भदंत विचित्तासाराभिवंस से धम्म-संबंधी आवश्यक प्रश्न पुछने के लिए अधिकृत किया। भदंत विचित्तासाराभिवंस ने महासी सयाडॉ द्वारा पूछे गए सभी प्रश्नों का विद्वतापूर्ण संतोषजनक उत्तर दिया। दो वर्षों (1954 से 1956) तक चले परंपरागत इस संगायन के क्रम में सभी लिपियों में निबद्ध तिपिटक और उसके संबद्ध साहित्य, यथा अट्ठकथा, टीका आदि की कड़ी जांच की गई और उनमें प्राप्त अंतरों को चिन्हित कर उनमें आवश्यक सुधार कर एक अंतिम प्रारूप तैयार किया गया। यहाँ यह ध्यातव्य है कि तिपिटक और उससे संबन्धित साहित्य के विभिन्न संस्करणों में कोई विशेष अंतर नहीं था। तिपिटक एवं उससे संबन्धित साहित्य के अंतिम प्रारूप को अंत में, संगीति के समक्ष आधिकारिक स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया गया। परिषद की आधिकारिक स्वीकृति के पश्चात इसे बर्मी लिपि में कई खंडो में मुद्रित कर प्रकाशित किया गया जो संप्रति अधिकांश प्रामाणिक बुद्धवचन के रूप में स्वीकृत है। अतएव इस परिषद के कार्य को संपूर्ण बौद्ध जगत के अनुपम उपलब्धि कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि राजगृह से प्रारम्भ संगायन की परंपरा ने यांगोन-संगायन तक की अवधि में बौद्ध धर्म के चिरस्थायित्व, यत्र-तत्र विकीर्ण बुद्धवचनों के प्रामाणिक संकलन, संघ में यदा कदा उत्पन्न बुराइयों के निराकरण तथा भारतीय धरा पर उत्पन्न धर्म को अंतर्राष्ट्रीय प्रारूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यह उपर्युक्त संगायनों का ही प्रतिफल है कि विद्वानों के समक्ष भारत की वह अनुपम विरासत उपलब्ध जिसे लेकर वे न सिर्फ रोमांचित है अपितु, बुद्धवचनों में निहित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, चारित्रिक आदि पहलुओं को अंगीकृत करने के लिए भी उत्सुक है; क्योंकि उन वचनों का परम उद्देश्य है - बहुजन हिताय! बहुजन सुखाय! अर्थात् मानव कल्याण। परिणामतः अनेक देशों में बौद्ध अध्ययन के केन्द्रों (विद्यालय, विश्वविद्यालय आदि) की स्थापना की गयी और वृहत संख्या में लोग बुद्ध-धम्म के ज्ञानार्जन के लिए आकृष्ट हो रहे हैं।

सब्बे सत्ता सुखिनो भवतु!

संदर्भ

1. पालि-इंग्लिश डिक्शनरी (पीटीएस संस्करण), www.buddhistboard.com
2. सीलक्खंधवग्ग-टीका , वीआरआई 1.18 (CSCD Third version)
3. संगीतिपरियायसुत्त, देखें दीघनिकाय भाग-3 (नालंदा संस्करण), सुत्त संख्या-10, पृष्ठ-166
4. वही, 3.10.2.6, पृ.167
5. "अयं..... भगवता धम्मो स्वक्खातो सुप्पवेदितो निय्यानिको उपसम-सवत्तनिको सम्मासम्बुद्ध पवेदितो, तत्थ सब्बेहेव संगायितब्बं,.....।" - दीघ. 3.10.3.पृ.168
6. वही
7. "आयतिं भिक्खूनं अविवादहेतुभूतं तत्थ तत्थ भगवता देसितानं अत्थानं संगायनं संगीति.....।" – संगीतिसुत्तवण्णना (लीनात्थप्पकासिनी), कॉम्पैक्ट डिस्क, वीआरआई (थर्ड वर्सन)
8. "अलं, आवुसो, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ। सुमुत्ता मयं तेन महासमणेन, उपदुत्ता च मयं होम – इदं वो कप्पति इदं वो न कप्पती ति। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम तं करिस्साम यं न इच्छिस्साम न तं करिस्सामा' ति।" - चुल्लवग्ग 11.1.1, पृ. 406

9. "हंद, आवुसो, मयं धम्मं च विनयं च संगायाम। पुरे अधम्मो दिप्पति, धम्मो पटिबाहिय्यति, अविनयो दिप्पति, विनयो पटिबाहिय्यति, पुरे अधम्मवादिनो बलवन्तो होन्ति, धम्मवादिनो दुब्बला होन्ति, अविनयवादिनो बलवन्तो होन्ति, विनयवादिनो दुब्बला होन्ती"ति। - वही
10. "उपालिं विनयंग पुच्छि सुत्तन्तानन्दपण्डितं।
पिटक तीणि संगीति अकंसु जिनसावका॥" – वही 11.9.13, पृ.415; महावंस-3.30, पृ. 114 nnm
11. संगीति में आनंद पर बुद्ध से क्षुद्रानुक्षुद्रक (खुद्दानुखुद्दक) प्रश्नों को नहीं पूछने के आरोप सहित आनंद पर निम्नलिखित आरोप लगाए गए।

1. आनंद ने भगवान के चीवर को सीने के क्रम में पैर से दबाया। इस आरोप के प्रत्युत्तर में आनंद ने यह कहा कि चीवर की सिलाई के क्रम में किसी सहायक के नहीं होने के कारण मजबूर होकर चीवर को पैर से दबाना पड़ा।
2. बुद्ध के द्वारा तीन बार स्पष्ट संकेत दिए जाने पर भी तथागत से कल्प तक जीवीत रहने की प्रार्थना नहीं करने के आरोप के जबाब में आनंद ने कहा कि वे उस समय मार के प्रभाव से ग्रसित होने के कारण भगवान से कल्प तक जीने की प्रार्थना नहीं कर सके।
3. तथागत के संघ में स्त्रियों के प्रवेश को धर्म के चिरस्थायित्व में बाधक मानने बाबजूद आनंद द्वारा तथागत से संघ में स्त्रियों के प्रवेश हेतु किए गए अनुरोध के आरोप का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि उसने महाप्रजापति गौतमी की महानता से प्रभावित होकर तथागत से स्त्रियों के संघ में प्रवेश की अनुमति देने का अनुरोध किया। और
4. आनंद ने तथागत के मृतक शरीर की वंदना सर्वप्रथम स्त्रियों से कराने के आरोप के उत्तर में आनंद ने कहा कि उसने ऐसा विकाल नहीं होने देने के उद्देश्य से किया।

12. चुल्लवग्ग -3.11.8.13, पृ. 414
13. "……. वस्ससतपरिनिब्बुते भगवति वेसालिका वज्जिपुत्तिका भिक्खू वेसालियं दस वत्थूनि दीपेन्ती – कप्पति सिंगिलोणकप्पो, द्वंगुलकप्पो, गामान्तरकप्पो, आवासकप्पो, अनुमतिकप्पो, अचिण्णकप्पो, अमत्थितकप्पो, जलोगिं पातुं, अदसक निसीदनं, जातरूपरजतं ति।" – चुल्लवग्ग - 12.1. पृ.416 महावंस -4.9-10
14. महावंस-4.47-49,पृ.130-31
15. वही 4.53, पृ.132
16. महावंस (गायगर), भूमिका, पृ.lvi
17. दीपवंस- 6.1
18. इस संगीति का विवरण प्रायः बौद्धधर्म के स्थविर संप्रदाय के ग्रन्थों यथा - सिंहल (श्रीलंकाई) वंस/इतिहास ग्रंथ दीपवंस, महावंस, समंतपासादिका एवं कथावत्थु-अट्ठकथा में पाया जाता है। अन्यत्र अर्थात बौद्धधर्म के किसी अन्य संप्रदाय के ग्रन्थों में इस संगीति के आयोजन का उल्लेख नहीं पाया जाता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि यह स्थविर संप्रदाय द्वारा प्रायोजित संगीति थी। अशोक के अभिलेखों में भी इस सगीति के आयोजन का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है।
19. महावंस, दीपवंस
20. डिबेटस कांट्रोवर्सी, पी.टी.एस., पृ.5
21. बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास, पृ. 199
22. बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास, पृ. 199
23. भंडारकर, अशोक, पृ.96
24. 2500 इयर्स ऑफ बुद्धिज़्म, पृ.47
25. इस संगीति के पूर्व भी श्रीलंका में सिंहली भिक्षु अरिट्ठ की अध्यक्षता में एक संगीति का आयोजन हो चुका था किन्तु, थेरवादी बौद्ध-जगत में यह संगीति ही चतुर्थ संगीति के नाम से विख्यात है। वही, पृ. 50
26. अभिधम्मत्थसंगहो (हिन्दी अनुवाद) भाग -1, पृ.4
27. 2500 इयर्स ऑफ बुद्धिज़्म, पृ.53
28. वही
29. अभिधम्मत्थसंगहो (हिन्दी अनुवाद) भाग -1, पृ.5
30. वही, पृ.6
31. 2500 इयर्स ऑफ बुद्धिज़्म, पृ.53

चयनित ग्रंथ-सूची

1. बापट, पी.वी., 2500 इयर्स ऑफ बुद्धिज़्म, द पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1956
2. रेवतधम्म, भदंत एवं राम शंकर त्रिपाठी, अभिधम्मत्थसंगहो (हिन्दी अनुवाद) भाग -1, वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1967
3. सीएससीडी, वीआरआई, थर्ड वर्सन

4. कश्यप, जगदीश, (प्रधान सम्पादक), चुल्लवग्ग, पालि पब्लिकेशन बोर्ड, पटना,1956
5. कश्यप, जगदीश, (प्रधान सम्पादक), दीघनिकाय, खण्ड-3, पालि पब्लिकेशन बोर्ड, पटना,1958
6. सिंह, परमानन्द (संपादक), दीपवंस, बौद्ध आकर ग्रंथमाला, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, 1996
7. पांडे, गोविन्दचन्द्र, बौद्ध-धर्म के विकास का इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1976
8. भंडारकर, डी.आर., अशोक, एस.चंद एण्ड कंपनी, दिल्ली, 1960
9. सोहनी, श्रीधर वासुदेव (संशोधक), महावंस टीका (वंसत्थप्पकसिनी), नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1971
10. विल्हेम गायगर (संपादक), महावंस, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आमेन कार्नर, ई.सी., 1912
11. शर्मा, बीरबल (संपादक),समंतपासादिका, खण्ड-1, नव नालन्दा महाविहार, नालंदा, 1964
12. बोड, माबेल एच. (संपादक), सासनवंस, पालि टेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1897
13. तिवारी, महेश (संशोधक), सुमंगलविलासिनी, खंड-1, नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा, 1975